



एकात्म

संस्करण 9, अंक 9, वैत्र मास, २०१८

National Research
& Journal Publication

समीक्षा लेख

महात्मा गाँधी और पं. दीनदयाल उपाध्याय का मानववादी चिन्तन

डा. सुशील कुमार त्रिपाठी

दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सारांश

महात्मा गाँधी और पं. दीनदयाल उपाध्याय दोनों ही युगपुरुष थे। इनका व्यक्तित्व व कृतित्व बहु आयामी था। ये उच्च कोटि के विचारक, प्रतिभा सम्पन्न लेखक, कुशल पत्रकार, प्रभावी वक्ता, निपुण संगठक, चतुर राजनीतिज्ञ व सफल आन्दोलन कर्ता थे। महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व ने जहाँ उन्हें राष्ट्रपिता और बापू के स्नेहमयी पद पर प्रतिस्थापित किया वहीं पं. दीनदयाल उपाध्याय अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बल पर एक युग द्रष्टा एवं राष्ट्र पुरुष के रूप में स्थापित हुए।

जहाँ महात्मा गाँधी ने देशवासियों को ऊँच-नीच एवं छुआछूत के भेदभाव और धार्मिक जड़ता से त्रस्त मानवता को मुक्ति दिलाकर उनमें स्वाधीनता की भावना को जागृत किया तथा उन्हें देश की आजादी के लिए करो या मरो के वेदवाक्य के साथ एक झण्डे के नीचे खड़ा किया। तत्पश्चात स्वतन्त्रता आन्दोलन वास्तव में जन आन्दोलन बन सका। वहीं पं. दीनदयाल उपाध्याय ने स्वतन्त्रता के बाद भारत को एक श्रेष्ठ, शक्तिशाली और संतुलित राष्ट्र के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया तथा पूँजीवादी विचारधारा और साम्यवादी विचारधारा की प्रतिद्वन्दिता में पिस रही मानवता को भारतीय संस्कृति में रची-वसी एकात्मता के सूत्र के आधार पर एकात्म मानववादी दर्शन का विकल्प उपलब्ध कराकर व्यष्टि से लेकर समष्टि तक तथा और आगे बढ़ते हुए परमेष्ठी तक के एकात्म-भाव को स्थापित किया।

मुख्य शब्द : एकात्म, मानववादी दर्शन, मानवता, दीनदयाल उपाध्याय।

भारत में मानववाद के आधारभूत तत्व पर विचार करने के लिए महात्मा गाँधी, और दीनदयाल के विचारों को प्रतिनिधि विचार रूप के उल्लेख करना उचित होगा। यह उल्लेख भारत के संदर्भ में तत्वों को समझने के उद्देश्य मात्र से उल्लेखित है। गाँधीजी के मानववादी चिन्तन-विचार का उपसंहार डार्विन के 'उच्चतम लोगों के जीवन' के लिए त्याग और हाब्स की अवधारणा, 'प्रत्येक का संघर्ष प्रत्येक से' के विरुद्ध 'सत्याग्रह' पर आधारित है। यह बन्धुत्व, प्रेम, परस्पर सहयोग, संबंध एवं अहिंसा के चतुष्कोणीय विधा का मजबूत बंधन है। गाँधीजी का मानववाद एक तरफ बहुधार्मिक और नैतिक अवधारणाओं पर स्थिर है तो दूसरी ओर पश्चिम के आधुनिक और उदारवादी अवधारणाओं का मिश्रण है। सत्याग्रह का विचार रखते हुए महात्मा गाँधी प्रतिपादित करते हैं कि उनका दिमाग ब्रिटिश साम्राज्यवाद से संघर्ष करते समय किसी ब्रिटिश से शारीरिक संघर्ष का नहीं है। उनकी



आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक अवधारणा की दृष्टि समग्र मानव समुदाय के बिना किसी भेद-भाव एवं अवरोध के 'कल्याण' की रही है। (1)

मानव प्रकृति के सम्बन्ध में महात्मा गांधी का विचार बहुत ही सकारात्मक था। उनका मानना था कि व्यक्ति में स्वार्थपरता और हिंसा से ऊपर उठने की पर्याप्त योग्यता होती है। व्यक्ति को वे समाज जीवन की आत्मा सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि व्यक्ति केन्द्र में रहता है जो एक ऐसे समाज की रचना कर सकता जहाँ मानव की सभी आवश्यकताएँ पूर्ण हो और समाज पूर्ण आत्मनिर्भर समाज बन सकें। महात्मा गाँधी समाजवाद द्वारा चित्रित संघर्ष की वर्ग-संघर्षवादी संकल्पना का खण्डन करते हैं। उन्होंने संघर्ष को सकारात्मक और अभीष्ट भी माना है! वास्तव में संघर्ष स्वयं को और समाज को रूपान्तरित करने का और मानव एकता को और अधिक सुदृढीकरण करने का अवसर उपलब्ध कराता है। महात्मा गांधी का मानना है कि संघर्ष व्यक्ति में नहीं अपितु सामाजिक संरचनाओं में बना हुआ है। अतः उनकी संघर्ष समाधान की संकल्पना का उद्देश्य व्यवस्थित रूप से सामाजिक संरचना को दुरुस्त करते हुए व्यक्ति को संरक्षण प्रदान करना एवं व्यवस्थित करना है। संघर्ष का गांधीवादी दृष्टिकोण सम्पूर्ण जीवन की एकता/समरूपता को आवश्यक मानता है। वे दिसम्बर-1924 में यंग इण्डिया में लिखते हैं कि "मैं मानवता की अनिवार्य एकता में विश्वास करता हूँ और यह सभी जीवों के लिए सभी मामलों में लागू होती है।"

गांधीजी से पृथक डा. राम मनोहर लोहिया ने धर्म और अध्यात्म से अलग सैद्धान्तिक विचार प्रस्तावित किया। उनका समाजवाद ही मानववाद है। वे कहते हैं, "हमने समाजवाद, स्वतंत्रता और अहिंसा जो हमारे देश के सुन्दर सत्य हैं, के संयुक्त स्वरूप को देखा है। लम्बे समय तक समाजवाद को वैरभाव के रूप में परखा गया।" डा. लोहिया गरीब लोगों और देश के गरीबी से अत्यधिक क्षुब्ध रहे हैं उनका मानना था कि विश्व के दो-तिहाई लोग खतरनाक गरीबी से संतप्त हैं। फलतः डा. लोहिया पूरे विश्व के लिए चार सूत्रीय आयोजन की आवश्यकता पर बल देते हैं। इस कारण वे पूरे विश्व में पर्याप्त रूप में आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति, सभी देशों की स्वतंत्रता, सभी जातियों की समानता और पूर्ण निरस्तीकरण के पक्षधर थे। इसका आचार्य कृपलानी समर्थन करते हुए कहते हैं कि वस्तुतः उन्होंने प्रत्येक कदम गांधी के सिद्धांत के अनुरूप बढ़ाया है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय भी समाज जीवन में व्यक्ति को केन्द्रीय इकाई मानते हैं। उनका मानना है कि व्यक्ति केवल शरीर नहीं है अपितु शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय है, जिसके कारण उसमें मैं के स्थान पर हम के सामूहिक भाव परिलक्षित होता है। उनका मानना है कि व्यक्ति को चरित्रवान बनाकर, उसे सुसंगठित कर एवं उसमें राष्ट्रीयता की भावना जगाकर एक चरित्रवान, सुसंगठित, सुसंस्कृत तथा राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत समाज का निर्माण किया जा सकता है, जिसके बल पर सनातन सत्य के ज्ञान की प्राप्ति सम्भव है। एकात्म मानववाद इसी प्रकार की सामाजिक व्यवस्था का घोटक है! यह न केवल भारतीय संस्कृति का युगानुकूल विवेचन है बल्कि वैश्विक विचारों के लिए पूरक



भारतीय चिन्तन भी है। पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने भारतीय संस्कृति, व्यक्ति और समाज, राजनीति और अर्थनीति को एकात्म मानववाद के चिंतन दृष्टि का आधार तय किया। उनके सिद्धांत का आधार सम्पूर्ण मानव का ज्ञान है, जो उपलब्धियों से संकलित है। उनके तत्त्वों पर विचार करते समय वे इस बात पर बल देते हैं कि जो हमारा है उसे युगानुकूल बनायें तथा जो बाहर का है उसे देशानुकूल बनाकर विचार करें। (2) सम्पूर्ण समाज का 'ऐतिहासिक विकास' और 'राष्ट्रीय चरित्र' राजनीतिक संस्कृति का प्रत्यय हैं। मानवता इसका आधारभूत पक्ष है।

पं. दीनदयाल जी का मन्तव्य था कि पिछली शताब्दियों के आर्थिक चिंतन और उस पर आधारित अर्थव्यवस्था का यह परिणाम हुआ कि हाड़-मांस का वास्तविक मानव हमारी दृष्टि से ओझल हो गया है। पूँजीवादी अर्थशास्त्री मनुष्य को एक अर्थ लोलुप प्राणी मानकर चलता है। उसके सभी निर्णय आर्थिक दृष्टिकोण से होते हैं। ऐसे व्यक्ति के सामने पांच रुपये सदैव चार रुपये से अधिक होते हैं। जहाँ पूँजीवादी अर्थरचना है वहाँ आर्थिक लक्ष्य उसका उद्देश्य है। ऐसी अवस्था में वह प्रतिस्पर्धा को कोसता है तथा दूसरे पर नियंत्रण को अन्याय बताकर—एकाधिकार द्वारा मनमाने कीमत वसूलने का तरीका तय करता है। (3) किंतु, पं. दीनदयाल जी ने व्यक्ति को एकांगी की तुलना में बहुरंगी कहा। राज्य के समान और संस्थाएँ भी आवश्यकतानुसार समय-समय पर पैदा होती हैं। व्यक्ति एक नहीं अनेक अंगों का सदस्य है। समाज 'स्वयंभू' है, राज्य उसकी संस्था है। व्यक्ति राष्ट्र की आत्मा को प्रकट करने का एक साधन है तथा राष्ट्र का उपकरण है।

आत्मा के आधार पर राष्ट्र खड़ा होता है और यह राष्ट्र के प्रत्येक श्रेष्ठ व्यक्ति के आचरण द्वारा प्रकट होती है। (4) गांधी और लोहिया से पं. दीनदयाल उपाध्याय का मानववाद पूर्णतया भिन्न है। वे गांधीजी के तरह मानववाद में धार्मिक और नैतिक तत्त्वों को जोड़ते हैं। उसे वे एकीकृत मानववाद कहते हैं। विभिन्न संस्कृतियों के अवदान एवं मानव धर्म के विश्वास के आधार पर वे विश्व राज्य की कल्पना करते हैं। उनके मानववाद का विचार-दर्शन इस तर्क पर आधारित है कि "हिन्दू संस्कृति भौतिक और अध्यात्म के जीवन मूल्य को प्रोत्साहित करती है।" (5) इसके लिए वे पुरुषार्थ चतुष्टय – धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष के समन्वित मार्ग का सुझाव देते हैं। अर्थ और कर्म को धर्म संचालित करता है। दोनों परस्पर संबंधित एवं परस्पर पूरक हैं। अकेले में मोक्ष आत्मा की संतुष्टि के लिए पर्याप्त नहीं है। वे रिलीजन को मात्र एक पद्धति कहते हैं जबकि धर्म पूजा पद्धति का विचार किये बगैर सभी के लिए शुभ का साधन है तथा रक्षा का मार्ग भी है। धर्म लोक या जनसमुदाय को धारण करता है। लोकधारणा के कारण सामाजिक नियमबद्धता के साथ कुछ नैतिक तात्पर्य भी परिगृहीत हो जाता है। जिस धर्म की वे बात करते हैं वह सर्वोच्च है, यहां तक कि सरकार, आमजन या बहुमत से भी। वे मार्क्स के शोषित, गरीब एवं पिछड़े वर्ग के दयावानभाव से प्रभावित थे किंतु उसे अधूरा मानते थे। मार्क्स के सिद्धांत के अनुसार प्रदत्त स्वतंत्रता-योजना के प्रति उनको भय था। पं. दीनदयाल जी के समन्वित मानववाद का प्रारूप सभी के लिए एक सादृश्य चतुर्दिक विकास की योजना थी।



भारतीय राजनीति में राजनीतिक दल और विचारधारा में विश्वास को मानव प्रतिष्ठा और स्वतंत्रता के साथ जोड़ते हुए पं. दीनदयाल जी ने कहा कि यदि ऐसा नहीं है तो लोकतंत्र नहीं है। राजनीति के विचार दर्शन में गांधीजी के सन्निकट मत प्रकट करते हुए वे कहते हैं कि प्रजातंत्र स्वशासन की आत्मा है तथा सभी राजनीतिक दलों को अपने लिए इस आशय की संहिता-पालन की आनिवार्यता करनी चाहिये। 10 जुलाई 1961 उन्होंने लोकतंत्र के बारे में एक घोषणात्मक प्रश्न उठाया, "लोकतंत्र के लिए पाकिस्तान के सेनाध्यक्ष जनरल अयूब ख़ाँ द्वारा राजनीतिक दलों पर प्रतिबंध तथा पं. नेहरू के द्वारा राजनीतिक दलों को काम करते रहने देने की अनुमति में अन्तर केवल उनकी रुचि के चुनाव और उनके अस्तित्व का है।" इस आलोचना का वे एक विकल्प प्रस्तावित करते हुए कहते हैं कि वस्तुतः ऐसे चयन का अवसर जनता के पास हो न कि शासकों के पास। प्रजातंत्र के अस्तित्व पर चयन के तरीके यदि सत्ता में बैठे लोग करने लगें तो इसे तानाशाही कहा जायेगा न कि प्रजातांत्रिक। इस आधार पर वे कांग्रेस के राजनीतिक पद्धति की आलोचना करते हैं। कांग्रेस सत्ता के प्रभाव एवं सत्ता में बने रहने के लिए प्रजातंत्र के साथ ऐसा ही कर रही है। प्रभाव और निर्णयात्मक दृष्टि से भारत प्रजातंत्र के रूप से समस्याग्रस्त है।

(6)

अस्तु पं. दीनदयाल जी का भारतीय राजनीतिक दर्शन अमानवीय साम्राज्यवाद और राजनीतिक सीमा बंधन से मुक्त है। संकीर्ण पंथवाद एवं विचारवाद से मुक्त धर्म आधारित राजदर्शन के वे प्रणेता थे। इसके लिए वे ऐसे प्राकृतिक नियम बनाये रखने के पक्षधर थे जहां सभी प्राणी बगैर किसी को हानि पहुंचाये अस्तित्व में बने रहें। भारत में परस्पर निर्भरता के रूप में जहां मनुष्य अपना विकास करते हुए समाज का सहयोग करे। उसी प्रकार राज्य भी विकास करते हुए पूरे विश्व की हित पूर्ति करे। इस प्रकार दीनदयाल जी का चिन्तन-दर्शन समन्वित मानववाद एवं जीवन की एकता पर आधारित राजनीतिक दर्शन है।

आर्थिक दृष्टि से मानव को केन्द्र में रखकर पं. दीनदयाल जी ने एकात्म मानववाद का अर्थ-दर्शन प्रस्तुत किया है। 'प्रत्येक को काम' अर्थव्यवस्था का लक्ष्य है। वे महात्मा गांधी की ही तरह उद्योगों के यंत्रीकरण के विरोधी थे। उनके अर्थदर्शन का संवाद मानव से जुड़ा विषय था। वस्तुतः यह दर्शन आज के आर्थिक झंझावात का उत्तर भी है। उनका दर्शन-संवाद इस प्रकार है, "यदि यंत्र ने मानव को उद्योगों से बेदखल कर दिया तथा ऐसी स्थिति में व्यक्ति की मृत्यु भूख से होती है तो वह उद्योगों के यंत्रीकरण की पराजय होगी। (7) पं. दीनदयाल जी देश में अधिक उत्पादन के पक्षधर हैं। अधिक उत्पादन का अभिप्राय लघु या कुटीर उद्योग धन्धों और मध्यम श्रेणी के उद्योगों से प्राप्त उत्पादन से है जहां बड़े पैमाने में मानव शक्ति शामिल होती है। इसी को वे राष्ट्र की पूंजी कहते हैं। सामाजिक उद्देश्य से वे उत्पादनों का मेल बिठाने का परामर्श देते हैं। उनका सुझाव है, "हमें औद्योगिक नीति का विचार करते समय श्री मो. विश्वेश्वरैया के सात 'एम' करना चाहिये। ये सात बातें हैं—



- (1) मनुष्य
- (2) वस्तु या पदार्थ
- (3) मुद्रा
- (4) यंत्र
- (5) प्रबंध
- (6) प्रवृत्ति क्षमता और
- (7) बाजार।

इन सातों का ठीक-ठाक मेल बिठाये बिना यदि हमने उद्योग-धन्धे प्रारम्भ किये तो वे चल नहीं पायेंगे। ये सभी एक दूसरे के पूरक हैं। यदि इनमें से एक भी बदल दिया तो फिर दूसरे में परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। जो मनुष्य एक साधारण छापे की मशीन पर काम करता है, वह 'रोटरी' पर उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकता। बैल से चलायी जाने वाली गाड़ी पेट्रोल से नहीं चल सकती। जिसके पास केवल दस हजार रुपये हैं वह एक लाख की मशीन लगाकर उद्योग नहीं प्रारम्भ कर सकता। जो दस आदमियों के एक छोटे से कारखाने की देखभाल कर सकता है वह हजार आदमियों के मिल का प्रबंधक नहीं बन सकता। जहाँ पत्थर नहीं मिलता वहाँ पत्थर काटने की मशीन लगाना निरी मूर्खता ही होगी।"

प्रो. विश्वेश्वरैया के उल्लेखित आर्थिक दृष्टि से उत्पादन प्रणाली के सात प्रकारों—मैन, मैटेरियल, मनी, मोटिव पावर, मैनेजमेण्ट, मार्केट और मशीन—में कोई भी उत्पादन के लिए अपरिवर्तनीय नहीं है, किंतु वास्तव में प्रत्येक नित्य बदलता है। यह बात नियोजकों को तय करनी होगी कि परिवर्तन विकास की दिशा में हो। मानव श्रम को महत्व देने का अभिप्राय है अधूरी उत्पादकता। इसका दुहरा घाटा है। खाली मशीन केवल पुरानी पूँजी खाती है नया कुछ नहीं किंतु बेकार मनुष्य आज भी खाता है। फलतः आज तो "कमाने वाला खायेगा" के स्थान पर "खाने वाला कमाएगा" यह लक्ष्य रखकर हमें भारत की अर्थ रचना करनी होगी। 8 व्यापक मानव धर्म की अधिष्ठान प्राप्त न हो पाने की स्थिति में पुरुषार्थ के राक्षसी महत्वाकांक्षा में परिणित होने की संभावना होती है। भगवद्गीता में आसुरी सम्पदा वर्णित है—

इदयद्यमया लब्धमियं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदयस्तीदयवि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ अ.16/13
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्येचापरानथि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी ॥ अ.16/14

समष्टि के ऐसे धर्मविहीन काम पुरुषार्थ को दुर्भाग्य से धर्मविहीन अर्थ पुरुषार्थ का साथ मिल जाय तो 'पहलेहि बौरी वानरी ता पुनि बीछीमार' जैसी अवस्था उस समाज की हो जायेगी और उसकी उन्मत्त मर्कट-क्रीड़ा से सारा मानव समाज त्रस्त हो जायेगा। इसके



विपरीत इन समष्टिगत पुरुषार्थों को धर्म का आधार मिल जाय तो पुरुषार्थ सारे विश्व को स्वर्ग बना देगा। वे सार्वजनिक क्षेत्र एवं स्वनिर्भर रोजगार के पक्षधर थे। यहाँ वे अनुत्पादक कर्म को अर्थात् पुरुषार्थ विहीन व्यक्ति को समाज पर भार मानते हैं। ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता पूरी होती भी रहे तो पुरुषार्थ न करने के कारण उनका विकास एकांगी है। मानव को पेट और हाथ दोनो मिले हैं। यही ऐसा तत्व है जिस आधार पर प्रत्येक को काम की अर्थव्यवस्था तय होनी चाहिये। पं. दीनदयाल जी ने इस परिकल्पना को भी खारिज किया कि प्रौद्योगिकी का संबंध केवल मशीन से है। श्रमिक केवल उपभोक्ता बनकर अस्तित्ववान नहीं रह सकता। (10) "सार्वजनिक उद्यम ही सम्पूर्ण मांग को संतुष्ट कर सकता है" जैसे समाजवादी उद्यम नीति के वे समर्थक नहीं थे। जोखिम उठाने वाले को वे उद्यमी की संज्ञा देते हैं। अविकसित एवं विकासशील देशों में उद्योग-धन्धों की व्यवहारिक मर्यादाओं को वे सीमांकित करते हैं। उनकी उपयोग नीति स्पष्ट है, "सुरक्षा और आधारभूत उद्योगों को राज्य के स्वामित्व में, व्यवसायों का ज्ञान रखने वाले अपनी पूंजी से संचालित उद्योगों को निजी क्षेत्र और निजी उद्योगों के राष्ट्रीयकरण करने की अपेक्षा राज्य के द्वारा आवश्यक नये उद्योग-धन्धों की स्थापना हो।" वे महात्मा गांधी के विचारों से साम्यता रखते हुए श्रम करने वाले श्रमिकों के स्वामित्व के पक्षधर हैं तथा अंशधारी के रूप में लाभ और प्रबंध में भागीदारी प्रदान करने का परामर्श देते हैं। संचालक मंडल में श्रमिकों के प्रतिनिधित्व प्रदान करने के वे पक्षधर हैं। यंत्र मानव का सहायक है, मानव का प्रतिस्पर्धी नहीं। जहाँ मानव श्रम को विनिमय समझकर उसका मूल्यांकन रूपये में होने लगा वहाँ मशीन मानव का प्रतिस्पर्धी हो जाती है तथा यही पूंजीवाद का दुर्गुण है। वे श्रम और पूंजी के संबंध को पुरुष और प्रकृति का संबंध मानते हैं एवं अर्थव्यवस्था आधारित व्यक्ति और समाज का निर्माण करना चाहते हैं जो विकेन्द्रीकरण और स्वदेशी आधारित है। वे यह मानकर चलते हैं कि 'स्वदेशी' की बात करते ही इसे बीते युग की प्रतिगामीपन का द्योतक माना जायेगा। किंतु उनका स्पष्ट विचार है कि विचार, व्यवस्था, पद्धति, पूंजी, उत्पादन प्रणाली, प्रौद्योगिकी तथा उपभोग के मापदंड सभी क्षेत्रों में हम विदेश पर निर्भर हो जाय, यह प्रगति का रास्ता नहीं है। इससे विकास नहीं होगा। यह स्व की विस्मृति एवं परतंत्र होना है। इसलिए वे उसके सृजन के आधार का सुझाव देते हैं। उन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था का उद्देश्य निर्धारित किया (11) जो निम्नांकित है—

1. प्रत्येक व्यक्ति को न्यूनतम जीवन स्तर की गारंटी तथा राष्ट्र की सुरक्षा सामर्थ्य की व्यवस्था।
2. इस स्तर के उपरान्त उत्तरोत्तर समृद्धि, जिससे व्यक्ति और राष्ट्र को वे साधन उपलब्ध हो सकें जिनसे वह अपनी चिति के आधार पर विश्व की प्रगति में योगदान कर सके।
3. उपर्युक्त लक्ष्यों की सिद्धि के लिए प्रत्येक सवयव एवं स्वस्थ व्यक्ति को साभिप्राय रोजगार का अवसर देना तथा प्रकृति के साधनों को मितव्ययिता के साथ उपयोग करना।



4. राष्ट्र के उत्पादक उत्पादनों का विचार कर अनुकूल प्रौद्योगिकी का विकास करना।
5. यह व्यवस्था 'मानव' की अवहेलना न कर उसके विकास में साधक हो तथा समाज के सांस्कृतिक एवं अन्य जीवन-मूल्यों की रक्षा करे। यह लक्ष्मण रेखा है। जिसका अतिक्रमण अर्थ-रचना, किसी भी परिस्थिति मंत नहीं कर सकती।
6. विभिन्न उद्योगों आदि में राज्य, व्यक्ति तथा अन्य संस्थाओं के स्वामित्व का निर्णय व्यावहारिक आधार पर हो।

अर्थव्यवस्था पर विचार प्रगट करने के अतिरिक्त पं. दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद की संस्कृति के शाश्वत मूल्यों, राष्ट्रीयता, प्रजातंत्र, समता और विश्व एकता के आदर्शों पर भी विचार प्रकट किया। वे भारतीय संस्कृति के संरक्षण की बात नहीं करते अपितु संस्कृति को गति प्रदान कर सजीव और उसे अधिक सक्षम बनाना चाहते हैं। जिससे समाज स्वस्थ एवं विकासोन्मुख जीवन व्यतीत कर सके। वे राष्ट्र की एकता के लिए छुआछूत और भेदभाव का अन्त कर मानव की मानव के प्रति समझ भाव विकसित करना चाहते हैं। पश्चिम का चिंतन वैचारिक इतिहास पर आधारित है। पश्चिम के चिंतकों ने प्रतिक्षण की समाजिक और राजनीतिक घटनाओं में बदले के आधार पर इतिहास के परिवर्तन की समझ विकसित की है और इसी आधार पर निष्कर्ष प्रस्तावित किया है। कमोवेश राजनीतिक पद्धति का निर्माण एवं निर्धारण विचारधारा से प्रभावित रहा। भौतिक और आर्थिक जीवन मूल्य प्रतिस्पर्धा पर तथा समानता का सिद्धांत कानून द्वारा सुनिश्चित होता है। पश्चिम में न्यूनतम और अधिकतम आय का अन्तर 1:80 का है। इसे समाप्त किये बगैर वर्गों की विद्यमानता को बर्दाश्त किया जा रहा। व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के टूटते-जुड़ते संबंधों की असंगतियाँ हैं। परिवार और समाज के मध्य समुदाय, व्यक्ति और समाज के बीच धर्म के स्थान पर समुदाय, संप्रदाय जाति आदि संस्थाओं का तेजी से विकास हुआ। इन्हीं के अध्ययन में व्यवहारवादी समय भी लगाते हैं। फलतः व्यक्ति, परिवार, राष्ट्रीय समाज, अन्तर्राष्ट्रीयता आदि की जो भूमिका हमारे यहाँ है, उनमें उन्हें अन्तर्विरोध दिखाई देता है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने समानता एवं विश्व एकता को मिल रही चुनौतियों को दृष्टिगत रखते हुए प्रजातंत्र और राष्ट्रवाद का विचार किया। राष्ट्र संगठन योजना के लिए वे भारत को एकात्म राज्य के रूप में देखना चाहते थे। भारत के लिए एकात्मक व्यवस्था इस कारण तर्कसंगत है कि कई प्रकार की क्षेत्रीयता के भावनात्मक विकास और उसके प्रति प्रतिबद्धता से बचा जा सकता है। 'भारत माता' के जातीय संयोजन में आन्ध्र माता, केरल माता, कश्मीर माता अति लघु माताओं के विलगाव को रोका जाय। इस आधार पर विविध राज्यों के निवासियों में विलगाव की संकीर्ण भाव के विकास को रोका जा सकता है। उनके एकात्म राज्य का दर्शन भारत के एक राष्ट्र और विविध राज्यों के आंगिक अवयव का दर्शन है। किंतु वे अधिकाधिक मात्रा में शक्तियों के विकेन्द्रीकरण के पक्ष का समर्थन करते हैं। वास्तविक रूप में इसके लिए वे पंचायतों को मजबूत बनाना चाहते थे



तथा यह कार्य अकेले शीर्ष शक्तियों के प्रदत्त प्रायोजित अधिकार से पूरा नहीं हो सकता। वे भारत के विभाजन से आहत थे तथा उनका विचार-दर्शन इस कारण एकात्म राज्य की शक्तियों के विकेन्द्रीकरण के पक्ष का समर्थक था। लक्ष्य प्राप्ति के लिए वे प्रजातंत्र, राष्ट्रवाद, समानता और विश्व एकता के एकात्म को प्राप्त करने के लिए मानवीय चेतना का विकास विश्व चेतना के स्तर तक करना चाहते थे।

इसी कारण उन्होंने प्रत्येक की स्वचेतना, परिवार के प्रति चेतना, गांव आदि के प्रति चेतना के विविध स्तरों के विकास की कल्पना प्रस्तुत की। पश्चिम के इस सोच में भले आस्तिक-नास्तिक, द्वैतवादी-विशिष्ट द्वैतवाद, ईश्वरवादी-अनिश्वरवादी, मूर्ति पूजक-निराकार जैसा भेद दिखाई दे किंतु हम सभी इस रचना के अंगभूत हैं। हमारे यहां व्यक्ति की रचना के लिए "मातृ देवोभव, पितृ देवोभव" कहा गया। अर्थात् परिवार की मान्यता के बाद अपना स्थान बनाया गया। समाज के लिए व्यक्ति का साथ हो इसके लिए कहा गया, "त्यजेदकं कुलस्यार्थं" साथ यह भी कहा गया कि "आत्मार्थं पृथिवी त्यजते" आत्मा के लिए कुल तथा सम्पूर्ण पृथ्वी को छोड़ दो का दर्शन प्रत्येक की मर्यादा तय करता है। उन्होंने राष्ट्रवाद को जग संस्कृति कहा तथा प्रार्थना की, "प्रादुरभूतः सुराष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृदिध ददातु"।

एकात्मवाद का एक अन्य पक्ष राजनीति से संबंधित है इस पर भी पं. दीनदयाल उपाध्याय ने प्रकाश डाला है। पं. दीनदयाल जी का विश्वास प्रजातंत्र में था, किंतु वे इसके भीड़तंत्र के स्वरूप एवं सत्तावादी प्रकृति की कमजोरियों से पूर्ण परिचित थे। इसके लिए वे लोकमत के जागरण, संगठित ओर अनुशासित राजनीतिक दल, मजबूत विपक्ष आदि के पक्षधर थे। वे बहुमत के शासन के अत्याचार से भी परिचित थे। उनका मन्तव्य था कि संभव है बहुमत दल की सरकार समाज हितों के विरुद्ध शासन करे। इसके लिए वे समाज की आवश्यकतानुरूप नागरिक प्रतिरोध की बात करते हैं।

गांधीजी के 'रामराज्य' की तरह वे धर्म राज्य की स्थापना पर बल देते हैं। राजनीतिक अनुक्रम की समझ विकसित हो सके इसके लिए वे समाज को प्रमुख और राज्य को उसका अभिकर्ता मानते हैं। यहां धर्म के अभिप्राय के दो तत्व हैं: प्रथम, शासक धर्म धारण करता है, वह उसका स्थापक नहीं है। वह धर्म का निश्चयकर्ता भी नहीं है, उसका उत्तरदायित्व केवल यह है कि उचित रूप में धर्म का क्रियान्वयन करे। धर्म का अभिप्राय शाश्वत और सृष्टि नियमों से है जो जीवन के लिए प्रेरक और सृष्टि के संचालन करने वाले हैं। इनकी खोज विज्ञान युग के पूर्व ऋषियों द्वारा किया गया। इनकी मौलिक विशेषता इस कारण है कि ये राष्ट्रजीवन और किसी राष्ट्र की प्रक्रिया जीवन के निर्धारक हैं। शासक का पवित्र कर्तव्य है कि इस जीवन प्रक्रिया की रक्षा करे जिसे हम धर्म कहते हैं।

वस्तुतः शासन अथवा राज्य राष्ट्र की रक्षा के लिए होता है। राष्ट्र की आत्मा होती है चिति। इस चिति की अभिव्यक्ति और व्यवहार के नियम ही राष्ट्रधर्म कहलाते हैं। इस राष्ट्रधर्म के मार्ग के सभी रोड़ों को दूर करना और चिति की अभिव्यक्ति के मार्ग को सुगम



बनाना शासन के कर्तव्य होते हैं। इस राष्ट्रधर्म की दक्षता के साथ पालन करना तथा उसकी मर्यादाओं का उल्लंघन न करना भी शासन का दायित्व होता है। इस दायित्व को ठीक ढंग से निभाने के लिए ही समाज शासन को कुछ अधिकार देता है। समाज द्वारा दिये गये इन अधिकारों का उपयोग केवल कर्तव्य-भावना से तथा विवेकपूर्वक करना, शासन का काम होता है।

किन्तु कई बार शासकों को इस कर्तव्य-भावना का विस्मरण हो जाता है। चतुर्विध पुरुषार्थों की परिभाषा में कहा जाये तो अर्थ पुरुषार्थ का धर्म के साथ नाता टूट जाता है, और फिर स्वाभाविक रूप से सत्ताधारियों का नैतिक अधः पतन प्रारंभ हो जाता है। भ्रष्टाचार के माध्यम से प्रतिष्ठान बनाये जाते हैं। सत्ता समाज-सेवा का साधन न रहकर अधिकाधिक सत्ता तथा अधिकाधिक शक्ति केन्द्रों पर अधिकार करने का साधन बन जाती है – केवल इन्हीं कामों के लिए उनका उपयोग होने लग जाता है। ये सब दण्डशक्ति के प्रभाव के लक्षण हैं। ऊँचे पद पर बैठने वालों का आचरण ऐसा होने लगा, तो फिर यथा राजा तथा प्रजा के न्याय से निम्न श्रेणी के शासकीय कर्मचारी भी उसी पथ पर चल पड़ते हैं। धर्म के अधिष्ठान पर जाग्रत निग्रहानुग्रहक्षम एवं संगठित समाज-जीवन खड़ा करना ही दंडशक्ति के अभाव-प्रभाव के दुष्परिणामों से मुक्त रहने का श्रेयस्कर मार्ग है।

व्यक्ति के जीवन पद्धति पर विचार करते हुए पं. दीनदयाल उपाध्याय शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा की प्रगति का विचार प्रस्तुत करते हैं। उनका चिंतन दर्शन समृद्धि की मौलिक गलती से बचने का परामर्श देता है। भारतीय संस्कृति में प्रगति से अभिप्राय शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा की प्रगति से है। मानव की और यह सम्पूर्ण प्रगति का विचार है जहां मनुष्य की पूर्णता का विचार न करके केवल समृद्धि का विचार है वहां समृद्धि के बाद भी सुख नहीं मिलता।

अपने विचार दर्शन की पुष्टि में पं. दीनदयाल जी ने मार्क्स के रोटी के दर्शन का प्रमाण प्रस्तुत किया है। रोटीमय समाज ने राज से संघर्ष किया किंतु अनुभव यह आया कि राज तो हाथ से गया ही रोटी भी नहीं मिली। इसके विपरीत अमेरिका में रोटी भी है और राज भी किंतु आत्मा की प्रगति पर न विचार होने के कारण सुख और शांति नहीं है। आज वहां लोग मानसिक रोग के शिकार हैं तथा नींद हराम है। इसलिए पं. दीनदयाल जी वे शरीर को धर्म का प्रथम साधन मानते हैं (शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्) तथा धर्म को आधारभूत पुरुषार्थ। फलतः राज्य मनमाना न करे इसलिए वे धर्मराज्य की कामना करते हैं। वे संविधान को उपरी अर्थात् दिखावे का शासन कहते हैं। संविधान से व्यवहार एवं अधिकार प्राप्त होता है किंतु अन्दर की मर्यादायें कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका से नहीं तय हो सकती। इसीसे बहुमत की चुनौती से प्रजातंत्र की रक्षा और धर्मानुसार चलने से अल्पमत की श्रेष्ठता स्थापित हो सकती है। संप्रति भारत की संसदीय प्रणाली में पं. पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी की उक्त आशय की भविष्यवाणी परिलक्षित हो रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ –



1. गाँधी, लोहिया एण्ड दीनदयाल (सम्पादित पी. परमेष्वरन), 1978, नई दिल्ली, दीनदयाल रिसर्च इन्सटीट्यूट, पृ. 72-73
2. ठेंगड़ी दत्तोपंतय एकात्म मानवदर्शन – एक अध्ययन, 2005, लखनऊ, लोकहित प्रकाशन पृ. 12 उपाध्याय दीनदयालरू एकात्म मानववाद, 1994, नोएडा, जागृति प्रकाशन, पृ. 24-25
3. गाँधी, लोहिया एण्ड दीनदयालय पूर्वीवत्त. पृ. 77-78
4. गाँधी, लोहिया एण्ड दीनदयालय पूर्वोक्त, पृ. 74.
5. उपाध्याय, दीनदयालय इंटीग्रल ह्यूमनिज्म, 1967, बम्बई, पृ. 33.
6. पं. दीनदयाल उपाध्याय-ए प्रोफाइलय (सम्पादित एस. राजा), 1972, नई दिल्ली, पृ. 193-94
7. उपाध्याय दीनदयालय भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा, 1998, लखनऊ, लोकाहित प्रकाशन, पृ. 70
8. नेने, विनायक वासुदेव (अनु. मोरेष्वर तपस्वी) पूर्वोक्त, पृ. 74-75
9. उपाध्याय दीनदयालय भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा, पूर्वोक्त, पृ. 79-80
10. उपाध्याय दीनदयालय एकात्म मानववाद, पूर्वोक्त, पृ. 74-75
11. ठेंगड़ी, दत्तोपंत, पूर्वोक्त, पृ. 21-23
12. रामचन्द्रन, पी.रू एक्सपोनेंट्स आफ द इंडियन अप्रोच (सम्पादित इन गाँधी, लोहिया एण्ड दीनदयाल), पूर्वोक्त, पृ. 100, 104.
13. सिंह, डा. केशव प्रसादरू एग्रिमेंट आन फन्डामेंटल्स (सम्पादित इन गाँधी, लोहिया एण्ड दीनदयाल), पूर्वोक्त, पृ. 40-41